आर एस एस क्या है?

मधुलिमए

मैने राजनीति में 1937 मे प्रदेश किया। उस समय मेरी उम्र बहुत कम थी, लेकिन चूकिं मैने मैट्रिक की परीक्षा जल्दी पास कर ली थी, इसलिए कालेज में भी मैने बहुत जल्दी प्रवेश किया। उस समय पूना में आर एस एस और सावरकरवादी लोग एक तरफ और राष्ट्रवादी और विभिन्न समाजवादी और वामपंथी दल दूसरी तरफ थे। मुझे याद है कि 1 मई 1937 को हम लोगों ने मई दिवस का जुलूस निकाला था। उस जुलूस पर आर एस एस के स्वयंसेवकों और सावरकरवादी लोगों ने हमला किया था और उसमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सेनापति बापट और हमारे नेता एस एम जोशी को भी चोटें आयी थी। तो उसी समय से इन लोगों के साथ हमारा मतभेद था।

हमारा संघ से पहला मतभेद था राष्ट्रीयता की धारणा पर। हम लोगों की यह मान्यता थी कि जो भारतीय राष्ट्र है, उसमें हिन्दुस्तान में रहनेवाले सभी लोगों को समान अधिकार हैं। लेकिन आर एस एस के लोगों और सावरकर ने हिन्दु राष्ट्र की कल्पना सामने रखी। जिन्ना भी इसी किस्म के सोच के शिकार थे – उनका मानना था कि भारत में मुस्लिम राष्ट्र और हिन्दु राष्ट्र दो राष्ट्र हैं। और सावरकर भी यही कहते थे। दूसरा महत्वपूर्ण मतभेद यह था कि हम लोग लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना करना चाहते थे और आर एस एस के लोग लोकतंत्र को पश्चिम की विचारधारा मानते थे और कहते थे कि वह भारत के लिए उपयुक्त नही है। उन दिनों आर एस एस के लोग हिटलर की बहुत तारीफ करते थे। गुरूजी संध के न केवल सरसंघचालक थे, बल्कि आध्यात्मिक गुरू भी थे। गुरूजी के विचारों में और नाजी लोगों के विचारों में आश्चर्यजनक साम्य है। गुरूजी की एक किताब है 'वी ऑर आवर नेशनहुड डिफाइंड' जिसका चतुर्थ संस्करण 1947 में प्रकाशित हुआ था। गुरूजी एक जगह कहते है, 'हिन्दुस्तान के सभी ग़ैर हिन्दु लोगों को हिन्दु संस्कृति और भाषा अपनानी होगी, हिन्दु धर्म का आदर करना और हिन्दु जाति और संस्कृति के गौरव–गान के अलावा कोई और विचार अपने मन में नही लाना होगा। एक वाक्य में कहें तो वे विदेशी हो कर रहना छोडे नही तो उन्हें हिन्दु राष्ट्र के अधीन होकर ही यहां रहने की अनुमति मिलेगी– विशेष सुलुक की तो बात ही अलग, उन्हें कोई लाभ नही मिलेगा, उनके कोई विशेषाधिकार नही होगें– यहां तक की नागरिक अधिकार भी नही।' तो गुरूजी करोडों हिन्दुस्तानियों को गैर–नागरिक के रूप में देखना चाहते थे। उनके नागरिकता के सारे अधिकार छीन लेना चाहते थे। और यह कोई उनके नए विचार नही है। जब हम लोग कालेज में पढते थे, उस समय से आर एस एस वाले हिटलर के आदर्शों पर ले चलना चाहते थे। उनका मत था कि हिटलर ने यहूदियों की जो हालत की थी, वही हालत यहां मुसलमानों और इसाइयों की करनी चाहिए।

नाजी पार्टी के विचारों के प्रति गुरूजी की कितनी हमदर्दी है, यह उनकी 'वी' नामक पुस्तिका के पृष्ठ 42 से, मैं जो उदाहरण दे रहा हूँ, उससे स्पष्ट हो जाएगा – 'जर्मनी ने जाति और संस्कृति की विशुद्धता बनाये रखने के लिए सेमेटिक यहूदियों की जाति का सफाया कर पूरी दुनिया को स्तंभित कर दिया था। इससे जातीय गौरव के चरम रूप की झांकी मिलती है। जर्मनी ने यह भी दिखला दिया कि जड़ से ही जिन जातियों और संस्कृतियों में अंतर होता है उनका एक संयुक्त घर के रूप में विलय असंभव है। हिन्दुस्तान में सीखने और बहस करने के लिए यह एक सबक है।

आप यह कह सकते है कि वह एक पुरानी किताब है – जब भारत आज़ाद हो रहा था उस समय की किताब है। लेकिन इनकी दूसरी किताब है 'ए बंच ऑफ थॉट्स'। में उदाहरण दे रहा हूँ उसके 'लोकप्रिय संस्करण' से, जो नवंबर 1966 में प्रकाशित हुआ। इसमें गुरूजी ने आंतरिक खतरों की चर्चा की है और तीन आंतरिक खतरे बताये हैं। एक हैं मुसलमान, दूसरे हैं ईसाई और तीसरे हैं कम्युनिस्ट। सभी मुसलमान, सभी ईसाई और सभी कम्युनिस्ट भारत के लिए खतरा हैं, यह राय है गुरूजी की। इस तरह की इनकी विचारधारा है।

गुरूजी के साथ, मतलब आर एस एस के साथ, हमारा दूसरा मतभेद यह है कि गोलवलकर जी और आर एस एस वर्ण व्यवस्था के समर्थक है और मेरे जैसे समाजवादी वर्ण–व्यवस्था के सबसे बडे दुश्मन है। मै अपने को ब्राह्मणवाद और वर्ण व्यवस्था का सबसे बडा शत्रु मानता हुँ। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि जब तक वर्ण–व्यवस्था और उसके ऊपर आधारित विषमताओं का नाश नही होगा, तब तक भारत में आर्थिक और सामाजिक समानता नही बन सकती है। लेकिन गुरूजी कहते है कि 'हमारे समाज की दूसरी विशिष्टता थी वर्ण–व्यवस्था, जिसे आज जातिप्रथा कह कर उपहास किया जाता है। आगे वे कहते है कि 'समाज की कल्पना सर्वशक्तिमान ईश्वर की चतुरंग अभिव्यक्ति के रूप में की गयी थी, जिसकी पूजा सभी को अपने अपने ढंग से और अपनी अपनी योग्यता के अनुसार करनी चाहिए। ब्राह्मण को इसलिए महान माना जाता था, क्योकि वह ज्ञान–दान करता था। क्षत्रिय भी उतना ही महान माना जाता था, क्योंकि वह शत्रुओं का संहार करता था। वैश्य भी कम महत्वपूर्ण नही था, क्योंकि वह कृषि और वाणिज्य के द्वारा समाज की आवश्यकताएं पूरी करता था और शुद्र भी, जो अपने कला–कौशल से समाज की सेवा करता था। इसमें बडी चालाकी से शूद्रों के बारे में कहा गया है कि वे अपने हुनर और कागरी के द्वारा समाज की सेवा करते है। लेकिन इस किताब में चाणक्य के जिस अर्थशास्त्र की गुरूजी ने तारीफ की है, उसमें यह लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करना शुद्रों का सहज धर्म है। इसकी जगह पर गुरूजी ने चालाकी से जोड़ दिया– समाज की सेवा।

हमारे मतभेद का चौथा बिंदु है भाषा। हम लोग लोक भाषा के पक्ष में है। सारी लोकभाषाएं भारतीय है। लेकिन गुरूजी की क्या राय है गुरूजी की यह राय है कि बीच में सुविधा के लिए हिंदी को स्वीकारा, लेकिन अंतिम लक्ष्य यह है कि राष्ट्र की भाषा संस्कृत हो। 'बंच आफ थॉट्स' में उन्होने कहा है, 'संपर्क भाषा की समस्या के समाधान के रूप में जब तक संस्कृत स्थापित नही हो जाती, तब तक सुविधा के लिए हमे हिन्दी को प्राथमिकता देनी होगी।' सुविधा के लिए हिन्दी, लेकिन अंत में वे संपर्क–भाषा चाहते है संस्कृत। हमारे लिए यह शुरू से मतभेद का विषय रहा। महात्मा गांधी की तरह, लोकमान्य तिलक की तरह हम लोग लोक भाषाओं के समर्धक रहे। हम किसी के उपर भी हिन्दी लादना नही चाहते। लेकिन हम चाहते है कि तमिलनाडु में तमिल चले, आंध्र में तेलुगु चले, महाराष्ट्र में मराठी चले, पश्चिम बंगाल में बंगला भाषा चले। अगर गैर–हिन्दी भाषी राज्य अंगरेजी का इस्तेमाल करना चाहते है तो वे करें। हमारा उनके साथ कोई मतभेद नही। लेकिन संस्कृत इने–गिने लोगों की भाषा है, एक विशिष्ट वर्ग की भाषा है। संस्कृत को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा देने का मतलब है देश में मुट्ठी भर लोगों का वर्चस्व, जो हम नहीं चाहते।

पांचवी बात, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में संघराज्य की कल्पना को स्वीकार किया गया था। संघराज्य में केन्द्र के जिम्मे निश्चित विषय होंगे, उनके अलावा जो विषय होंगे, वह राज्यों के अंर्तगत होगे। लेकिन मुल्क के विभाजन के बाद राष्ट्रीय नेता चाहते थे कि केन्द्र को मजबूत बनाया जाये, इसलिए संविधान में एक समवर्ती सूची बनायी गयी। इस समबर्ती सूची में बहुत सारे अधिकार केन्द्र और राज्य दोनों को दिये

गये और जो वशिष्ट अधिकार है वह पहले तो राज्य को मिलनेवाले थे, लेकिन केन्द्र को मजबूत करने के लिए केन्द्र को दे दिये गये। बहरहाल, संद्यराज्य बन गया। लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संध और उसके आध्यात्मिक गुरू गोलवलकर – इन्होने हमेशा भारतीय संविधान के इस आधारभूत तत्व का विरोध किया। ये लोग 'ए यूनियन ऑफ स्टेट्स' संघराज्य की जो कल्पना है, उसकी खिल्ली उडाते है और कहते है कि हिन्दुस्तान में यह जो संघराज्यवाला संविधान है, उसको खत्म कर देना चाहिए। गुरूजी 'बंच ऑफ थाट्स' में कहते है, 'संविधान का पुनरीक्षण होना चाहिए और इसका पुनः लेखन कर शासन की एकात्मक प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए।' गुरूजी एकात्मक प्रणाली यानी केन्द्रनुगामी शासन चाहते है। वे यह कहते है कि ये जो राज्य वगैरह है, यह सब खत्म होने चाहिए। इनकी कल्पना है कि एक देश, एक राज्य, एक विधायिका और एक कार्यपालिका। यानी राज्यों के विधानमंडल, राज्यों के मंत्रिमंडल सब समाप्त। यानी ये लोग डंडें के बल पर अपनी राजनीति चलायेंगे। अगर डंडा इनके हाथ में आ गया राजदंड, तो केन्द्रनुगामी शासन स्थापित करके छोडेंगे।

इसके अलावा स्वतंत्रता आंदोलन का राष्ट्रीय झंडा था तिरंगा। तिरंगे झंडे की इज्जत के लिए, शान के लिए सैकडों लोगों ने बलिदान दिया, हजारों लोगों ने लाठियाँ खायीं। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कभी भी तिरंगे झंडे को राष्ट्रीय ध्वज नही मानता। वह तो भगवा ध्वज को ही मानता था और कहता था, भगवा ध्वज हिन्दु राष्ट्र का प्राचीन झंडा है। हमारा वही आदर्श है, हमारा वही प्रतीक है।

जिस तरह संघराज्य की कल्पना को गुरूजी अस्वीकार करते थे, उसी तरह लोकतंत्र में भी उनका विश्वास नही था। लोकतंत्र की कल्पना पश्चिम से आयात की हुई कल्पना है और पश्चिम का संसदीय लोकतंत्र भारतीय विचार और संस्कृति के अनुकूल नही है, ऐसी उनकी धारणा है। जहां तक समाजवाद का सवाल है, उसको तो वे सर्वथा परायी चीज मानते थे और कहते थे कि यह जितने 'इज़्म' हैं यानी डेमोक्रेसी हो या समाजवाद, यह सब विदेशी है और इनका त्याग करके हमको भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज रचना करनी चाहिए। जहां तक हमारे जैसे लोगों को सवाल है हम लोग तो संसदीय लोकतंत्र में विश्वास रखते है, समाजवाद में विश्वास रखते है और यह भी चाहते है कि शांतिपूर्ण ढंग से और महात्मा जी के सृजनात्मक सिद्धांत को अपना कर हम लोकतंत्र की प्रतिष्ठापना करें, सामाजिक संगठन करें और समाजवाद लायें।

जब कांग्रेस के एकतंत्रीय शासन के खिलाफ हमारी लडाई चल रही थी, तो हमारे नेता डॉ0 राममनोहर लोहिया कहते थे कि जिस कांग्रेस ने चीन के हाथ भारत को अपमानित करवाया, उस कांग्रेस को हटाने के लिए और देश को बचाने के लिए हमको विपक्ष के सभी राजनीतिक दलों के साथ तालमेल बैठाना चाहिए। इस विषय पर डाक्टर साहब से मेरी बहुत चर्चा होती थी। दो साल तक बहस चली। आखिर तक मै यह कहता रहा कि आर एस एस और जनसंघ के साथ हमारा तालमेल नही बैठेगा। अंत में डाक्टर साहब ने कहा कि मेरे नेतृत्व को तुम मानते हो या नही? मैने कहा – हाँ, मैं मानता हूँ। वे बोले, क्या यह ज़रूरी है कि सभी प्रश्नों पर तुम्हारी और मेरी राय मिले या सभी प्रश्नों पर मैं तुमको सहमत करू। एक–आध प्रश्न ऐसा भी रहे जो हम दोनो के बीच मतभेद का विषय हो। और मै तो इस तरह का तालमेल चाहता हू एक बडे दुश्मन को हराने के लिए, तो इस मामले मे तुम मान जाओ, इसको 'ट्रायल' दे दो। हो सकता है मेरी बात सही निकले, यह भी हो सकता है तुम्हारी बात सही निकले। लेकिन मेरी यह मान्यता रही है कि अंत में आर एस एस और डॉ0 राममनोहर लोहिया की विचारधारा में संधर्ष हो कर रहेगा।

जब इंदिरा गांधी ने हमारे उपर इमरजेंसी लादी या वह तानाशाही की ओर बढने लगी, संजय को आगे बढाने लगी, मारूती कांड हुआ तो यह बात सही है कि इमरजेंसी के खिलाफ लडने के लिए लोगों ने इन लोगों के साथ तालमेल बिठाया। लोकनायक जयप्रकाश जी कहते थे कि एक पार्टी बनाये बिना हम लोग इंदिरा को और तानाशाही को नही हटा सकते। चौधरी चरण सिंह की भी यही राय थी कि एक पार्टी बने। हम लोग जब जेल मे थे, यह पूछा गया था कि एक पार्टी बनाने के बारे में और चुनाव लडने के बारे में आपकी क्या राय है। मुझे याद है कि मैने यह संदेश जेल में भेजा था कि मेरी राय में चुनाव लडना चाहिए। चुनाव में करोडों लोग हिस्सा लेंगे। चुनाव एक गतिशील चीज़ है। चुनाव अभियान जब ज़ोर पर आएगा, तो इमरजेंसी के जितने बंधन है वह सब टूट जाऐंगे और लोग अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का इस्तेमाल करेंगे। इसीलिए मेरी राय थी कि चुनाव लड़ना चाहिए। अब चूकिं लोकनायक जयप्रकाश नारायण और सभी लोगों की यह राय थी कि एक पार्टी बनाए बिना हम लोगों को सफलता नही मिलेगी, तो हम लोगों ने भी इसके लिए मान्यता दे दी थी। लेकिन में कहना चाहता हुँ कि यह जो समझौता हुआ था, वह दलों के बीच में हुआ था – जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, संगठन कांग्रेस, भालोद और कुछ विद्रोही कांग्रेसी। आर एस एस के साथ ना हमारा कोई करार हुआ न आर एस एस की कोई शर्त मानी गई। बल्कि जेलों मे हमारे बीच मनु भाई पटेल का एक परिपत्र प्रसारित किया गया था, उससे तो हम यह पता चला कि चौधरी चरण सिंह ने 7 जुलाई 1976 को आर एस एस की सदस्यता और जो नयी पार्टी बनेगी उसकी सदस्यता इन दोनो मे मेल होगा या टकराव, इसकी चर्चा उठायी थी। जनसंघ के उस समय के कार्यकारी महासचिव ओमप्रकाश त्यागी ने स्पष्ट शव्दों में कहा था कि नयी पार्टी जो शर्त लगाना चाहे लगा सकती है। फिलहाल आर एस एस के ऊपर तो पाबंदी है, आर एस एस को भंग किया जा चुका है, इसलिए आर एस एस का तो सवाल ही नही उठता।

बाद में जब हम लोग पार्टी का नया संविधान बना रहे थे, तो हमारी संविधान उपसमिति ने एक सिफारिश की थी कि ऐसे किसी संगठन के सदस्यों को, जिसके उद्देश्य, नीतियों और कार्यक्रम जनता पार्टी के उद्देश्य नीतियों और कार्यक्रम से मेल नही खाते, पार्टी का सदस्य नही बनने देना चाहिए। इसका विरोध करने की किसी को भी कोई आवश्कता नही थी, यह तो एक बिलकुल सामान्य बात थी। लेकिन यह विचारणीय बात है कि अकेले सुदरसिंह भंडारी ने इसका विरोध किया। बाकी सभी सदस्यों ने – इनमें रामकृष्ण हेगड़े भी थे, श्रीमती मृणाल गोरे थी, श्री बहुगुणा थे, श्री वीरेन शाह थे और मै स्वयं था – मिल कर एक राय से यह प्रस्ताव लिया था कि हम सुंदरसिंह भंडारी का विररोध करेंगे। 1976 के दिसंबर महीने में इस पर विचार करने के लिए जब बैठक हुई, तो अटल जी ने जनसंघ और आर एस एस की ओर से एक पत्र लिखा था राष्ट्रीय समिति को, जिसमें उन्होने यह चर्चा की थी कि कुछ नेताओं में इस पर आपसी रज़ामंदी थी किआर एस एस का सवाल नही उठाया जा सकता। लेकिन कई नेताओं ने मुझे बताया कि इस तरह कि कोई रज़ामंदी नहीं थी और इस तरह का कोई वचन नही दिया गया था, क्योंकि उस समय तो आर एस एस सामने था ही नहीं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं उस वक्त जेल में था और अगर ऐसा कोई गुप्त करार था भी, तो मैं उसका भागीदार नहीं हुँ।

जनता पार्टी का जो चुनाव घोषणापत्र बना, मै बिलकुल सफाई के साथ कहना चाहता हुँ, उस पर आर एस एस की विचारधारा का जरा भी असर नही था, बल्कि एक-एक मुद्दे को सफाई के साथ स्पष्ट किया गया था। क्या यह बात सही नहीं है कि जनता पार्टी का चुनाव धोषणापत्र धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और गांधीवादी मूल्यों पर आधारित समाजवादी समाज की चर्चा करता है – उसमें हिन्दु राष्ट्र का कहीं कोई

उल्लेख नही। अल्पसंख्यकों के अधिकारों की- समान अधिकार की चर्चा और यह भी कहा गया है कि उनके अधिकारों की पुरी रक्षा की जायेगी और गुरूजी तो कहते है कि जो अल्पसंख्यक लोग हैं उनको नागरिकता के भी अधिकार नही रहने चाहिए। उनको हिन्दु राष्ट्र के बिलकुल अधीन होकर रहना पडेगा। जनता पार्टी ने विकेद्रीकरण की बात और गुरूजी तो धोर केन्द्रीकरणवादी थे। वे तो राज्यों को ही समाप्त करना चाहते राज्य विधान मंडलों को ही समाप्त करना चाहते राज्य के मंत्रिमंडलों को समाप्त करना चाहते लेकिन जनता पार्टी ने तो विकेंद्रीकरण की चर्चा की। यानी राज्यों की स्वायत्ता पर जनता पार्टी आक्रमण नही करना चाहती। समाजवाद की चर्चा की गयी, समाजिक न्याय की चर्चा की गयी, समानता की चर्चा की गयी। क्या जनता पार्टी ने अपने चुनाव धोषणापत्र मै यह कहा था कि वर्णव्यवस्था रहेगी और शुद्रों को दूसरों की सेवा में ही अपना जीवन बिताना चाहिए ? जनता पार्टी ने तो यह कहा था कि पिछडों को हम लोग पूरा मौका देंगे, इतना ही नही, विशेष अवसर देंगे और यह कहा था कि उनके लिए सरकारी सेवाओं में 25 से 33 प्रतिशत तक आरक्षण किया जायेगा।

हां, यह बात सही है कि आर एस एस के लोगों ने दिल से इस चुनाव धोषणापत्र को नही स्वीकारा। मेरी यह शिकायत रही और कुशाभाऊ ठाकरे को एक पत्र में मैने कहा भी था कि मेरी तरफ से शिकायत यह है कि चर्चा के दौरान आप बहुत जल्दी चीजों को मान जाते है लेकिन दिल से नहीं मानते। इसलिए आपके बारे में शक पैदा होता है। यह मैने उनको बहुत पहले कहा था, और मेरे मन मैं आर एस एस के बारे में शुरू से संदेह रहे। डॉक्टर साहब के जमाने से रहे। लेकिन इसके बावजूद तानाशाही के खिलाफ लडने के लिए हम लोगों ने जरूर उनसे तालमेल किया। लोकनायक जयप्रकाश जी की यह इच्छा थी कि एक पार्टी बने, तो चूकि चुनाव घोषणापत्र में किसी तरह का समझौता नही किया गया था, इसलिए हमने इस बात को स्वीकार कर लिया। लेकिन साथ-ही-साथ मैं कहना चाहता हूँ कि मै शुरू से इसके बारे में बिलकुल स्पष्ट था अपने मन में कि अगर जनता पार्टी को एकरस होकर, एक सुसंबद्ध पार्टी के रूप में काम करना है, तो दो काम अवश्य करने पडेंगे। नंबर एक, आर एस एस वालों को अपनी विचारधारा बदलनी पडेगी और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की कल्पना को स्वीकारना पडेगा। नंबर दो, आर एस एस के परिवार के जो संगठन हैं- जैसे भारतीय मजदूर संघ, विद्यार्थी परिषद, इन संगठनों को अपना अलग अस्तित्व समाप्त करना पडेगा और जनता पार्टी के समानधर्मी संगठनो के साथ अपने को विलीन करना पडेगा। इसके बारे में मै शुरू से ही स्पष्ट था और चुकि मुझे जनता पार्टी के मजदूर और युवा संगठनों की देख-रेख का भार दिया गया था, मैने यह लगातार कोशिश की कि विद्यार्थी परिषद अपने अस्तित्व को मिटाये, भारतीय मजदूर संघ अपने अस्तित्व को मिटाये।

लेकिन ये लोग अपनी स्वायत्ता की चर्चा करने लगे। वस्तुतः ये लोग हमेशा नागपूर के आदेश से चलते है, एक चालकानुवर्तित्व का सिद्धांत मानते है। मैं गुरूजी का ही उदाहरण देता हूँ। गुरूजी ने यह कहा कि हम लोग इस तरह का मन बनाते हैं कि वह बिलकुल अनुशासित होता है और जो हम लोग कहेंगे वही सब लोग मानते हैं। इनके संगठन का एक ही सूत्र है - एकचालकानुवर्तित्व। ये लोकतंत्र को नहीं मानते। बहस में भी इनका विश्वास नही। इनकी कोई आर्थिक नीति नहीं है। उदाहरण के लिए गुरूजी ने अपने 'बंच आफॅ थॉट्स' में इस बात पर खेद प्रकट किया है कि जमीदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया है। जमींदार के खत्म होने पर गुरूजी को बडी तकलीफ है, बडी पीड़ा है। लेकिन गरीबों के लिए उनके मन में दर्द नही है।

मैंने आर एस एस वालों से कहा कि आपको हिन्दु संगठन की कल्पना छोड कर सभी धर्मों के और सभी

संप्रदायों के लोगों को अपनी संस्था में स्थान देना पडेगा। आपके जो वर्ग-संगठन हैं, उनको जनता पार्टी के दूसरे वर्ग। संगठन के साथ मिला देना पडेगा। तो उन लोगों ने कहा कि यह इतना जल्दी कैसे होगा। बड़ी दिक्कतें है, लेकिन हम धीरे-धीरे बदलना चाहते है। वे इस तरह की गोलमोल बातें करते रहते थे। उनके आचरण को देखकर में इस नतीजे पर पहुंचा कि उसको बदलना है नही। खासकर 1977 के जून के विधानसभा चुनावों के बाद जब उनके हाथ में चार राज्यों और एक केन्द्र शासित प्रदेश का शासन आ गया तथा उत्तर प्रदेश और बिहार में उनको बहुत बडी हिस्सेदारी मिल गयी, तो इसके बाद वे सोचने लगे कि अब हमको बदलने की क्या जरूरत है। हम लोगों ने चार राज्यों को फतह कर लिया है, धीरे-धीरे अन्य राज्यों को करेंगे, फिर केन्द्र भी हमारे हाथ में आयेगा। बाकी जो नेता है वे बुड्ढे नेता है, आज नही तो कल मर जायेंगे और किसी नेता नये को हम बनने नही देंगे। इसलिए आपने देखा होगा 'आर्गनाइजर', पांचजन्य आदि सभी अखबारों में जनता पार्टी के किसी भी नेता को उन्होने नही बख्शा। मेरे उपर तो उनका विशेष अनुग्रह रहा है, विशेष कृपा रही है। मुझे गाली देने में अपने अखबारों का जितना स्थान उन्होने खर्च किया उतना तो शायद इंदिरा गांधी को भी गाली देने के लिए नही किया होगा।

एक अरसे तक इनलोगों से मेरी बातचीत होती रही। एक दफा तो मुझे याद है मेरे घर में, बंबई में बाला साहब देवरस आये। फिर उसके बाद 71 के चुनाव के बाद एक दफा मै उनसे मिला। इमर्जेन्सी के पहले एक दफा माधवराव मुले से मेरी बातचीत हुई। चौथी बार माधवराव मुले और बाला साहब देवरस से मई 1977 में मेरी बात हुई थी। तो ऐसा कोई नहीं कह सकता कि मैंने उनसे चर्चा नहीं की थी, लेकिन मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उनके दिमाग का जो किवाड है, वह बंद है और उसमें कोई नया विचार पनप नहीं सकता। बल्कि आर एस एस की यह विशेषता रही है कि वह बचपन में ही लोगों को एक खास दिशा में मोड़ देते हैं। पहला काम वह यही करते हैं कि बच्चो की, युवको की विचारप्रक्रिया को 'फ्रीज़' कर देते है-जड़ बना देते है। उसके बाद कोई नया विचार वे ग्रहण ही नहीं कर पाते। तो कोशिश मैने की। एक बार मैंने ट्रेड युनियन कार्यकर्ताओं की बैठक बुलायी। जनता पार्टी के सभी संगठनों के प्रतिनिधि उसमें आये, लेकिन भारतीय मजदूर संघ ने उसका बहिष्कार किया। इतना ही नही, अकारण मुझे गालियां भी दी। विद्यार्थी परिषद और युवा मोर्चा के साथ भी विलीनीकरण की बात चलायी गयी, लेकिन वे लोग हमेशा अलग रहे, क्योंकि आर एस एस अपने को 'सुपर पार्टी' के रूप मे चलाना चाहता है। यह लोग जीवन के हर अंग को न केवल छुना चाहते है, बल्कि उस पर कव्जा करना चाहते हैं। जार्ज फर्नाड़िस ने उसी समय लेख लिखा 'इंडियन एक्सप्रेस' में, उसमें उन्होने इसी विचार को ले कर दत्तोपंत ठेंगडी का एक उदाहरण दिया। लेकिन दत्तोपंत ठेंगड़ी ने कहा कि पूरे समाज में हम लोग छा जाना चाहते है, जीवन का कोई पहलू हम लोग छोडेंगे नही - सब पर कब्जा करेंगे, यह कोई नया विचार नही है ठेंगड़ी का। यह तो 'वी' और 'बंच ऑफ थॉट्स' में गुरूजी ने जगह जगह पर कहा है। और कोई भी सर्वसत्तावादी संगठन जीवन के किसी भी पहलू को स्वतंत्र नही छोडना चाहता। वह कला पर छा जायेगा, संगीत पर छा जायेगा, अर्थनीति पर छा जायेगा, संस्कृति पर छा जायेगा। फ़ासिस्ट संगठन का यही तो धर्म है।

दरअसल ये लोग हमारी जनता पार्टी पर क़ब्ज़ा करना चाहते थे। ये लोग सरकारों पर क़ब्ज़ा करना चाहते थे। एक साथ इन्होंने कई नेताओं को लालच दिखाया था प्रधानमंत्री बनने का। इधर ये मोरारजी भाई को भी अंत तक कहते रहे कि आप ही को रखेंगे हम लोग। ये चरण सिंह को भी बीच-बीच में कहते थे कि आप को बनायेंगे। ये जगजीवन राम को भी कहते थे कि हम आप ही को बनायेंगे। ये चंद्रशेखर को भी कहते थे। ये जार्ज फ़र्नाडिस को भी कहते थे। हां, उन्होने कभी मुझे यह कहने का साहस नही किया। एक

दफा अटल जी से मैने कहा, तो उन्होने कहा, 'नानाजी ने ना केवल तुमको, बल्कि मुझको भी कभी नहीं कहा। न वे आपको बनाना चाहते हैं न कभी मुझको बनाना चाहते हैं। ऐसा मजाक में अटल जी ने मुझसे कहा। बहरहाल, वे मुझसे इसलिए इस तरह की बात नहीं करते थे क्योकि में न किसी की वंचना करता हूँ न किसी के द्वारा वंचित होता हुँ। वे सोचते हैं इसको बेवकूफ नही बनाया जा सकता, तो इसको कहने से क्या फायदा ? यह तो और सावधान हो जाएगा।

ये लोग समय समय पर क्या कहते है, उसका कोई मूल्य नही। क्या आर एस एस के नेताओं ने कहा है कि गुरू गोलवरकर के जो विचार है, उन्हें हमने त्याग दिया? सिर्फ अटल जी कहते है कि राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, समाजवाद, सामाजिक न्याय आदि धारणाओं को स्वीकारना चाहिए, उसके बिना अब नहीं चला जा सकता। पर यह केवल अटल जी कहते है। बाकि संधियों पर तो मेरा विश्वास ही नहीं। ये लोग जेल में माफी मांगते थे रिहाई हासिल करने के लिए, बाला साहब देवरस ने इंदिरा गांधी का अभिनंदन किया था जब वे सुप्रीम कोर्ट में राजनारायण के केस में जीतीं। तो इन लोगों के वचनों पर मेरा विश्वास नहीं है। मेरी स्पष्ट राय है कि आर एस एस के नेताओं को अगर वे पार्टी से निकाल देते, राष्ट्रीय समिति से, उनके सदस्यों पर पाबंदी लगा देते और विशेषकर नानाजी, सुंदर सिंह भंडारी एंड कंपनी को पार्टी से निकाल देते, तभी मैं विश्वास कर सकता था।

मधुलिमए

(1 मई समाजवादी नेता मधुलिमए का 86 वां जन्म दिन है और यह भी संयोग है कि 1 मई को जनता पार्टी की स्थापना के 31 वर्ष पूरे हो रहे हैं।)